वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०४, मंगलवार
दिनांक-१५-०६-१९७६, गाथा-९ से ११, प्रवचन-९

नौवीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश। प्रभाकर भट्ट, योगीन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं, प्रभु! यह एक के बाद एक आत्मा को मनुष्यपना मिलना, आर्यकुल मिलना इत्यादि... यहाँ तक आया है।

क्रोधादि कषायों का अभाव होना परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है... परम्परा, यह शब्द अन्दर पड़ा रहा है। **कषायों का अभाव होना परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है...** यहाँ चाहिए। परम्परा शब्द पड़ा रहा है। एक के बाद एक। यहाँ तक आया था न कि श्रेष्ठ बुद्धि, श्रवण मिलना दुर्लभ है, सत्य धर्म का श्रवण मिलना दुर्लभ, उसका ग्रहण होना दुर्लभ। सुनना, पश्चात् उसे पकड़ना कि यह क्या कहते हैं? यह ग्रहण (होना) दुर्लभ। पश्चात् धारण (होना) दुर्लभ। जो यह कहते हैं, उस बात को धार रखना, वह दुर्लभ। पश्चात् श्रद्धान दुर्लभ। यह तो अपूर्व बात है। धारण तक तो हुआ है, ऐसा कहेंगे। परन्तु श्रद्धान। स्व चैतन्य का आश्रय लेकर श्रद्धान होना दुर्लभ है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दुर्लभ हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्लभ का अर्थ अशक्य है? दुर्लभ अर्थात् एक के बाद एक पुरुषार्थ बहुत अपेक्षित है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रद्धान दुर्लभ, संयम दुर्लभ। फिर इन्द्रिय दमन करके स्वरूप में रहना दुर्लभ। **विषय-सुखों से निवृत्ति,...** दुर्लभ। **कषायों का अभाव होना परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है...** यह परम्परा अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ तक आया था। **सबों से उत्कृष्ट...** इस सब बात में भी उत्कृष्ट। **शुद्धात्मभावनारूप वीतराग निर्विकल्प समाधि का होना बहुत मुश्किल है,...** यह श्रद्धान आदि साधारण लिया है। परन्तु सबमें से उत्कृष्ट शुद्धात्मभावना। भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप की भावना, ऐसी **वीतराग निर्विकल्प समाधि का होना बहुत मुश्किल है,...** प्रभाकर भट्ट गुरु से कहते हैं। आहाहा!

क्योंकि उस समाधि के शत्रु जो मिथ्यात्व,... निर्विकल्प समाधि जो मोक्ष का मार्ग, उसका शत्रु मिथ्यात्व, **विषय, कषाय, आधि का विभाव परिणाम हैं, उनकी प्रबलता है।** आहाहा! **इसलिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं होती...** सम्यग्दर्शन—स्वरूप अनुभव करके प्रतीति करना और स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप में रमणता, उसकी प्राप्ति नहीं होती। **और इनका पाना ही बोधि है,...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्राप्त करना, इसका नाम बोधि। बोधि, समाधि के दो अर्थ करते हैं। अपनी शुद्ध चैतन्य स्वरूप वस्तु, उसकी श्रद्धा। ज्ञान में वह वस्तु लेकर अनुभव में प्रतीति और उसका ज्ञान और स्वरूप में रमणता, उसरूपी बोधि अत्यन्त दुर्लभ है। आहाहा!

उस बोधि का जो निर्विषयपने से धारण... है? क्या है? निर्विषय नहीं, निर्विघ्न चाहिए। निर्विघ्न किया है? सुधार। आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा का दर्शन होना, उसका ज्ञान होना और उसमें रमणता, उसरूपी बोधि, यह दुर्लभ है। और उस बोधि का निर्विघ्नरूप से धारण मृत्यु तक (होना) समाधि, उसे समाधि कहा जाता है। आहाहा! मृत्यु के अन्तिम समय तक इस बोधि को धारण करना, इसका नाम समाधि है। आहाहा! मृत्यु काल में आनन्द की दशा में रमणता करके देह छूटे, वह समाधि। समझ में आया?

इस तरह बोधि समाधि का लक्षण सब जगह जानना चाहिए। देखा! बोधि का अर्थ यह कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति और समाधि का अर्थ यह (कि) मृत्यु तक उसका निर्वाह करना। मरण तक बोधि को धारण करना, वह समाधि। समझ में आया? **इस बोधि समाधि का मुझमें अभाव है,...** लो! इतने तक तो बात की। प्रभाकर भट्ट कहते हैं। मैंने जिनसूत्र सुने, जाने, धारण किये, परन्तु परलक्ष्य से। परन्तु इस बोधि का अभाव है, प्रभु! आहाहा! मूल चीज़ जो स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (होना चाहिए), प्रभु! उस बोधि का अभाव है। शिष्य ऐसा प्रश्न करता है। आहाहा! है?

बोधि समाधि का मुझमें अभाव है, इसीलिए संसार-समुद्र में भटकते हुए मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया,... आहाहा! कहा न यह? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' परन्तु वीतरागी आनन्द को प्राप्त नहीं किया। वीतरागी परमानन्द

सुख। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में वीतरागी परमानन्द सुख की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! **संसार-समुद्र में भटकते हुए मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया,...** आहाहा! अनन्त बार द्रव्यलिंग मुनिपना धारण किया, परन्तु वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया। उसमें आया है न यह? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' (छहढाला, चौथी ढाल)

किन्तु उस सुख से विपरीत... देखो! **आकुलता के उत्पन्न करनेवाला नाना प्रकार का शरीर का तथा मन का दुःख ही चारों गतियों में भ्रमण करते हुए पाया।** आहाहा! स्वर्ग में भी मन और शरीर का दुःख है, ऐसा कहते हैं। वहाँ सुख है नहीं। आहाहा! **इस संसार-सागर में भ्रमण करते मनुष्य-देह आदि का पाना बहुत दुर्लभ है, परन्तु उसको पाकर कभी प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए।** आहाहा! मनुष्यदेह आदि अर्थात् जैसे श्रवण होना, सुनना, जानना, यहाँ तक तो मिला, कहते हैं। परन्तु **कभी प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए।** उसमें रुकना नहीं। अन्तर आनन्द में जाना। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में झुकना, उससे उसे वीतरागी परमानन्द की प्राप्ति होती है। समझ में आया? **प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए। जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं।** आहाहा! शास्त्र का सच्चा श्रवण हुआ—मिला, ग्रहण हुआ, धारण किया परन्तु वीतरागी परमानन्द के सुख की प्राप्ति नहीं हुई। आहाहा! अर्थात् कि स्व का आश्रय नहीं लिया। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रमादी अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्द में न जाना और राग में अटक जाना। शास्त्र को जाना, धारण किया, उसमें अटक जाना, वह प्रमाद है। आहाहा! समझ में आया?

जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं। आहाहा! अन्तर में स्वाधीन स्वभाव में न आना, अनन्त आनन्दस्वरूप भगवान वह नहीं करके प्रमादी होते हैं, वे चार गति में भटकते हैं। दूसरा आधार दिया है। दूसरे ग्रन्थ में भी कहा है। 'ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है—'**इत्यादिदुर्लभरूपां' इत्यादि। इसका अभिप्राय**

ऐसा है कि यह महान दुर्लभ तो जैनशास्त्र का ज्ञान है,... देखा! यहाँ तक तो आया है। सच्चे जैनशास्त्र का ज्ञान, वह भी दुर्लभ, वह तो मिला। **उसको पाके जो जीव प्रमादी हो जाता है...** वह। आहाहा! अपने अब शास्त्र जानते हैं और अपने को ख्याल है कि मार्ग ऐसा है। ऐसा ज्ञान करके जो रुकता है और अन्तर स्वरूप का आश्रय नहीं लेता, वह वरांका शब्द पड़ा है पाठ में। है न? भाई! रंक प्राणी। आहाहा! वरांका-नर। '**संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरम्॥**' आहाहा! वरांका है। वरांका, गरीब, पुरुषार्थहीन। आहाहा! यह संस्कृत में है।

प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष... है न? अर्थ किया है न, देखो न! रंक, यह वरांका का अर्थ किया है। आहाहा! वह रंक-रांका प्राणी है। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्द का नाथ अनन्त लक्ष्मी सम्पन्न प्रभु में उसका आश्रय नहीं लेता और मात्र जैनशास्त्र के जानपने में अटक कर रुक गये हैं, वे सब रंक पुरुष हैं, भिखारी हैं। बाहर में माँगते हैं, परन्तु अन्दर में है, वहाँ नहीं जाते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आनन्द और वीतराग स्वभाव से तो भरपूर भगवान है। आहाहा! वहाँ उसका आश्रय नहीं करता और मात्र जानपने में रुककर वहाँ रुक जाता है।

वह रंक पुरुष... आहाहा! **बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।** आहाहा! परमात्मस्वरूप जो अपना है, उस ओर ढलते नहीं, मुड़ते नहीं, आश्रय नहीं लेते और मात्र जानपने में रुककर अटक गये हैं। आहाहा! देखो!

मुमुक्षु : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ, यह ज्ञान ही नहीं। जानपना क्या? शास्त्र का ज्ञान तो अनन्त बार किया है। आत्मा आनन्द का नाथ वीतरागी सुख से भरपूर, आहाहा! उसकी शरण में जाता नहीं, उसका आश्रय लेता नहीं, वह प्राणी ऐसे जैनशास्त्र के जानपनेवाला भी बहुत काल संसार में भटकेगा। आहाहा! जैनशास्त्र का जानपना किया, ऐसा कहते हैं। उसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी विकल्प से हुई, परन्तु स्वयं भगवान कौन है, (उसे जाना नहीं)। भूतार्थ सत्यार्थ भगवान का इसने आश्रय नहीं लिया। इसलिए इसे परम वीतरागी सुख नहीं मिला। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है, भाई! आहाहा!

जो जैनशास्त्र का ज्ञान है, उसको पाके... ऐसा, देखा! **जीव प्रमादी हो जाता है,...** आहाहा! **वह रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।** भव के अभावस्वभावरूप भगवान आत्मा, ऐसे वीतरागी आनन्द के सुख से भरपूर प्रभु, उसका आश्रय नहीं लेता। वह रंक प्राणी चार गति में भटकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : बिना पैसेवाला भटकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बिना पैसेवाला, आत्मा की लक्ष्मी नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा की लक्ष्मी मिली नहीं तो रंक है। आहाहा! भिखारी है, भिखारी।

भगवान आत्मा अनन्त वीतरागी सुख का भण्डार, अनन्त वीतरागी आनन्द का भण्डार भगवान आत्मा है। आहाहा! उसका आदर नहीं करते। आहाहा! उसका— पर्याय का घोलन वहाँ द्रव्य पर नहीं जाता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो यह कहा, वह जैनशास्त्र का ज्ञान किया बाहर का, निश्चय बिना की व्यवहार श्रद्धा आदि हुई। शास्त्र के ज्ञान में यह आया। देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहार श्रद्धा (हुई), परन्तु वह कहीं वस्तु नहीं, और उससे कुछ निश्चय प्राप्त नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग गजब, भाई! आहाहा! जिसमें वीतरागी आनन्द प्राप्त होता है, वह वीतराग का मार्ग है। आहाहा! व्यवहार के देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... यद्यपि उसे व्यवहार नहीं कहा जाता परन्तु बोला जाता है। बन्ध अधिकार में कहा है न? अभव्य भी ऐसा व्यवहार करता है। व्यवहार है भासरूप से। आहाहा! यहाँ तक प्राप्त हुआ, तथापि उसे छोड़कर वीतरागी आनन्द का नाथ भगवान, उस ओर उसका आश्रय नहीं करता, उसकी पर्याय में भगवान को समीप नहीं करता, उसकी पर्याय में राग और जानपने को समीप रखकर स्वभाव के समीप से दूर वर्तता है। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु की वर्तमान पर्याय को उसके समीप में न ले जाकर, उस पर्याय में मात्र यह जानपने में रुक गया है। आहाहा! जिसे जानपना नहीं, ग्रहण-धारण नहीं, उसकी तो बात क्या करना? ऐसा कहते हैं। परन्तु शास्त्र जाने, वाँचन किये, बातें करना आया... आहाहा! परन्तु वह रंक पुरुष अपनी निधि को सम्हालने अन्दर गया नहीं। आहाहा! वह रंक है। जिसे निजलक्ष्मी के निधान की प्रतीति की खबर

नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! वे कहे न, व्यवहार से परम्परा से होता है। यहाँ इनकार करते हैं, लो! किसे परम्परा कहा है? वह तो दूसरी बात है। जिसे निश्चय आत्मदर्शन हुआ है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बोधि प्रगट हुई है, उसे जो व्यवहार है, वह परम्परा कारण व्यवहारनय से कहा है। क्योंकि व्यवहार है, वह तो परलक्ष्य में है और आत्मा में तो स्वआश्रय में जाना है। तो पर आश्रय का भाव स्वआश्रय में मदद करे? भविष्य में मदद करे, अभी नहीं, ऐसा होगा? परम्परा मुक्ति कही है न? अरे! प्रभु! भाई!

जो स्व के आश्रय से काम होता है, वह पर के आश्रय के भाव से वह काम होगा? वर्तमान नहीं और भविष्य में होगा? यह तो परम्परा मोक्ष... कल बहुत विरोध आया है। पृष्ठ आये हैं। ललितपुर के। अरे! भगवान! यह व्यवहार परम्परा की जो बात है, वह तो समकिती के लिये है। जिसने स्वआश्रय से ज्ञान-दर्शन प्रगट किये हैं, उसे व्यवहार अभी पराश्रय का राग है। उसे स्वआश्रय का उग्रपना करके छोड़ेगा, इससे उसे परम्परा कहने में आया है। परन्तु उसके द्वारा प्राप्त होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बड़ा विवाद उठा है। अरे! भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, देखो! जैनशास्त्र का ज्ञान हुआ। जिनेश्वर की श्रद्धा भी हुई, ऐसा आता है, भाई! मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। वह कहे कि परन्तु वह तो कपट से किया है। उसमें एक आता है। कपट नहीं। जैनगुरु की श्रद्धा, जैन की श्रद्धा बराबर है। परन्तु आत्मज्ञान नहीं है। समझ में आया? सातवें (अधिकार) में लिया है, सातवें। मोक्षमार्गप्रकाशक में। है, कहाँ है? पाँचवें में होगा नहीं? ऐसा कि ऐसी श्रद्धा तो की है उसने। कहीं है सही कि यह करता है, उसमें कपट नहीं है।

मुमुक्षु : तो नौवें ग्रैवेयक जाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये नहीं। वरना नौवें ग्रैवेयक जाता है, वह जैनधर्म की व्यवहार श्रद्धा है। समझ में आया? वरना नौवें ग्रैवेयक नहीं जाता। ऐसा है कहीं। है कहीं? सातवें में। नौवें ग्रैवेयक जाता है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है और कपटरहित वह आचरण करता है। नहीं तो नौवें ग्रैवेयक जाये नहीं, ऐसा है। उसमें है कहीं। सातवें (अधिकार) में है। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ है, उसका आश्रय किया नहीं।

समझ में आया? ऐसा कि उसे तो कुछ ऐसे... है? देखो, देखो अन्त में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह, यह। लाओ। यह द्रव्यलिंगी को कहा। आहाहा! थोड़ा कषाय।

साधन द्वारा इसलोक-परलोक के विषय भी नहीं चाहता। यह है। यह भी इसके अतिरिक्त दूसरा यहाँ है। 'द्रव्यलिंगी राज्य छोड़कर निर्ग्रन्थ होता है, अट्ठाईस मूलगुण को पालन करता है, उग्र से उग्र अनशनादि करता है, क्षुधादि बाह्य परीषह सहन करता है, शरीर के खण्ड-खण्ड होने पर व्यग्र होता नहीं। किसी से क्रोध नहीं करता। ऐसे साधन परलोक में... ऐसी दशा न हो तो ग्रैवेयक तक कैसे पहुँचे? तथापि उसे शास्त्र में मिथ्यादृष्टि कहा, उसका कारण कि उसे तत्त्व का श्रद्धान-ज्ञान सच्चा नहीं है।' समझ में आया? ऐसा है। वह तो ऐसा कि उसकी श्रद्धा है, ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा है उसे।

द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिक की सेवा नहीं करता। यह लेना है। देखा! यह लेना है। ***अन्य देवादिक की सेवा नहीं करता। हिंसा-विषय में नहीं प्रवर्तता। क्रोधादि नहीं करता। मन-वचन-काय रोके, उसे मिथ्यात्वादि चारों आस्रव होते हैं। वे कार्य वह कपट द्वारा भी नहीं करता।*** यह लेना है। ***'कपट से करे तो ग्रैवेयक तक कैसे पहुँचे? इसलिए अन्तरंग अभिप्राय में मिथ्यात्वादि का रागादिभाव होता है। वह नव अथवा आस्रवतत्त्व में उसे श्रद्धा नहीं है।'*** आहाहा! वह आस्रव में है। क्रिया बराबर करता है। अन्य देवादि को मानता नहीं। मानता है देव-गुरु को, ऐसा कहना है। यहाँ मुझे तो यह कहना है। देव-गुरु को मानता है परन्तु वह तो परलक्ष्यी वस्तु है। उससे स्वआश्रय प्रगट नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा करे परन्तु उसे स्वआश्रय अन्दर नहीं आया। शास्त्र का वांचन है तो करे तो सही न! ऐई! आहाहा!

यहाँ तो कहना था कि उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है। परन्तु स्व का आश्रय नहीं है, इसलिए सब मिथ्यात्व है। ऐई! यह ऐसी बात है। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, उसमें अन्य कुदेवादि को मानता नहीं। कुदेवादि को माने तो नौवें ग्रैवेयक जा नहीं सकता। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार भव्य-अभव्य गया। वह कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की मान्यता छोड़कर गया है और उसे देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता है। परन्तु उसका निश्चय स्वरूप है, उसका उसे भान नहीं। आहाहा! तो वह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी क्या करे? कहते हैं। यह व्यवहार है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागी सुख का भण्डार भगवान, वह परसन्मुख के लक्ष्यवाला तो सब राग है, सब व्यवहार है। भले निश्चय न हो तो व्यवहार है अकेला। परन्तु उससे कुछ प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। जैनशास्त्र का ज्ञान है, **उसको पाकर...** ऐसा। अर्थात् यहाँ तक ले लिया। नौवें ग्रैवेयक गया। **जीव प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।** आहाहा! आनन्द के नाथ को देखा नहीं। प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा पूर्ण वीतरागी आनन्द से भरपूर भगवान, इस रंक ने उसे देखा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बोधि पाकर भी समाधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बोधि नहीं। पूर्ण समाधि न करे इतना। ऐसा। ठेठ तक न पहुँचावे। समाधि ली है न इसलिए। पाकर समाधि तीन की एकता से मृत्यु करना, इसे न पावे तो वह भी गड़बड़ है। आहाहा!

यहाँ तो **सारांश यह हुआ...** आहाहा! यहाँ रंक है और उसका अर्थ यह हुआ कि वीर्य-पुरुषार्थ से व्यवहार को बराबर किया। परन्तु वह तो वीर्य ही नहीं, नपुंसकता है। इसलिए उसे रंक कहा। समझ में आया? आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा व्यवहार, शास्त्र का ज्ञान, महाव्रतादि कपटरहित न हो तो नौवें ग्रैवेयक में नहीं जाता। आहाहा! परन्तु वह वीर्य व्यवहार को रचनेवाला, वह वीर्य नहीं। आहाहा! वह रंक है, जिसका वीर्य नपुंसक है। आहाहा! ऐसे रंक पुरुष... ओहोहो! तीन लोक के नाथ चैतन्य भगवान

को जिसने समीप में किया नहीं। आहाहा! जिसने पर्याय में वीतरागता परमानन्द की दशा स्व के आश्रय से प्रगट नहीं की, वह सब रंक है, कहते हैं। आहाहा!

सारांश यह हुआ कि वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से... देखा! आहाहा! वह व्यवहार में रहा परन्तु वह तो दुःख और राग है। आहाहा! **वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से यह जीव संसाररूपी वन में भटक रहा है,...** आहाहा! आत्मा परम वीतराग आनन्द का भण्डार है। उसे जिसने प्राप्त किया नहीं, वह वीतराग सुख के अभाव में चार गति में भटकता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! यह लोगों को व्यवहार परम्परा वह बराबर है। उसे तुम मानो। आहाहा! सर्वत्र अध्यवसाय छुड़ाया है। वहाँ कहे, पर का आश्रय व्यवहार सब छुड़ाया है, ऐसा कहते हैं वहाँ तो। पर का आश्रय, वह तो छुड़ाया। पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, प्राण रक्षा कर सकता हूँ, यह तो झूठ है। यह अध्यवसाय तो छुड़ाया परन्तु इसके अतिरिक्त जितना पराश्रयभाव हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि, वह व्यवहार भी छुड़ाया है। आहाहा! निष्कम्प निश्चयभाव में स्थिर होने का कहा है यहाँ तो। (समयसार, कलश १७३) आहाहा! अरे रे! इसकी खबर नहीं होती। और शास्त्र के जानपने में रुककर अन्तर में जाने को अवकाश नहीं। आहाहा! वह संसारवन में भटकेगा। आहाहा!

इसलिए वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करने योग्य है। लो, यह तात्पर्य। व्यवहार है, वह राग है, दुःख है। आगे कहेंगे। व्यवहार अर्थात् कि राग। इसमें आगे कहेंगे। निश्चय वीतराग। आत्मा के आश्रय से वीतरागदशा सम्यग्दर्शन होता है, वह निश्चय। और पराश्रय जितना राग हो, वह व्यवहार। आहाहा! राग की दिशा तो परसन्मुख है और वीतराग की दशा की दिशा स्वसन्मुख है। वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की दशा स्व दिशा सन्मुख है और राग की दशा पर दिशा सन्मुख है। पण्डितजी! आहाहा! अब पर दिशा सन्मुख राग, उसे स्व दिशा सन्मुख मोड़ सकेगा? अरे! यह बात बैठना चाहिए न? चेतनजी! है? वस्तु ऐसी है, बापू! परलक्ष्यी राग, पर दिशा सन्मुख का झुका हुआ भाव, उसे स्व दिशा सन्मुख मोड़े। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करने योग्य है।** बाकी सब

बातें छोड़नेयोग्य है। आहाहा! वीतरागी परमानन्द प्रभु है, उसमें से वीतरागी परम आनन्द को प्रगट करने की अपेक्षा से आदरणीय है। आहाहा! व्यवहारभाव, वह आदरणीय नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार तो छोड़नेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़नेयोग्य है। उस छोड़नेयोग्य से आदरनेयोग्य हो? कहो, अब ऐसा।

परम्परा का अर्थ यह है कि स्व का आश्रय लिया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसका जो व्यवहार है, वह यहाँ उग्र आश्रय लेगा, तब वह छूट जायेगा। परन्तु वह उग्र आश्रय लेगा ही, ऐसा। इस अपेक्षा से व्यवहार को परम्परा (कारण कहा), यह व्यवहारनय से कथन है। आहाहा! क्या हो? शास्त्रों का अर्थ करने में जहाँ गड़बड़ उठे। अनादि का ऐसा ही किया है न। यह नौवीं गाथा हुई।

गाथा - १०

अथ यस्यैव परमात्मस्वभावस्यालाभेऽनादिकाले भ्रमितो जीवस्तमेव पृच्छति–

१०) चउ–गइ–दुक्खहँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ।
चउ–गइ–दुक्ख–विणासयरु कहहु पसाएँ सो वि।।१०।।

चतुर्गतिदुःखैः तत्पानां यः परमात्मा कश्चित्।
चतुर्गतिदुःखविनाशकरः कथय प्रसादेन तमपि।।१०।।

चउगइदुक्खहं तत्ताहं जो परमप्पउ कोइ चतुर्गतिदुःखतत्पानां जीवानां यः कश्चिच्चिदानन्दैकस्वभावः परमात्मा। पुनरपि कथंभूतः। चउगइदुक्खविणासयरु आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञारूपादिसमस्तविभावरहितानां वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबलेन परमात्मोत्थसहजानन्दैकसुखामृतसंतुष्टानां जीवानां चतुर्गतिदुःखविनाशकः कहहु पसाएं सो वि हे भगवन् तमेव परमात्मानं महाप्रसादेन कथयति। अत्र योऽसौ परमसमाधिरतानां चतुर्गतिदुःखविनाशकः स एव सर्वप्रकारेणोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।१०।। एवं त्रिविधात्म प्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये प्रभाकरभट्ट विज्ञप्तिकथनमुख्यत्वेन दोहकसूत्रत्रयं गतम्।

आगे जिस परमात्म–स्वभावके अलाभ में यह जीव अनादि काल से भटक रहा था, उसी परमात्मस्वभाव का व्याख्यान प्रभाकरभट्ट सुनना चाहता है –

जो परम आतम चतुर्गति के दुःख से संतप्त के।
है चतुर्गति दुख विनाशक कहिये कृपाकर अब उसे।।१०।।

अन्वयार्थ :– [चतुर्गतिदुःखैः] देवगति, मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंचगतियों के दुःखों से [तप्तानां] तप्तायमान (दुःख) संसारी जीवों के [चतुर्गतिदुःखविनाशकरः] चार गतियों के दुःखों का विनाश करनेवाला [यः कश्चित्] जो कोई [परमात्मा] चिदानन्द परमात्मा है, [तमपि] उसको [प्रसादेन] कृपा करके [कथय] हे श्रीगुरु, तुम कहो।

भावार्थ :– वह चिदानन्द शुद्ध स्वभाव परमात्मा आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के भेदरूप संज्ञाओं को आदि लेके समस्त विभावों से रहित, तथा वीतराग निर्विकल्पसमाधि के बल से निज स्वभावकर उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृतकर सन्तुष्ट हुआ है हृदय

जिनका, ऐसे निकट संसारी-जीवों के चतुर्गतिका भ्रमण दूर करनेवाला है, जन्म-जरा-मरणरूप दुःख का नाशक है, तथा वह परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है, वही सब तरह ध्यान करनेयोग्य है, सो ऐसे परमात्मा का स्वरूप आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ। इसलिए कृपाकर आप कहो। इस प्रकार प्रभाकर भट्टने श्री योगीन्द्रदेव से विनती की।।१०।।

गाथा - १० पर प्रवचन

आगे जिस परमात्म-स्वभाव के अलाभ में... भगवान परमात्मस्वरूप आनन्द ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव, आनन्द का जिसका स्वभाव, उसके अलाभ को, उसके अलाभ से **यह जीव अनादि काल से भटक रहा था, उसी परमात्मस्वभाव का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट सुनना चाहता है**- लो! यह व्याख्यान सुनना चाहता है। दसवीं।

१०) चउ-गइ-दुक्खहँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ।
चउ-गइ-दुक्ख-विणासयरु कहहु पसाएँ सो वि।।१०।।

अन्वयार्थ : देवगति, मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंचगतियों के दुःखों से... देखो! मनुष्यगति और देवगति को भी दुःख से तृप्त कहा। आहाहा! '**चतुर्गतिदुःखैः**' ऐसा नहीं कहा कि स्वर्ग में सुख है और नरक में दुःख है। आहाहा! चारों गतियों में दुःख है। आहाहा! '**चतुर्गतिदुःखैः**' '**तप्तानां**' अर्थात् **तप्तायमान (दुःख) संसारी जीवों के...** आहाहा! '**चतुर्गतिदुःखविनाशकरः**' **चार गतियों के दुःखों का विनाश करनेवाला जो कोई चिदानन्द परमात्मा है, उसको कृपा करके हे श्रीगुरु, तुम कहो।** आहाहा! ऐसी जिज्ञासा है।

जो चार गति के दुःख से तप्तायमान संसारी, उन दुःखों का नाश करनेवाला कोई चिदानन्द परमात्मा है। आहाहा! चिदानन्द परमात्मा है। आहाहा! **उसको कृपा करके 'कथय' हे श्रीगुरु, तुम कहो।** आहाहा! हमको तो यह सुनना है, कहते हैं। व्यवहार... व्यवहार नहीं, यह हमको कहो—ऐसा कहता है। कितने ही तो और यह हुए हैं श्रीमद् में कि निश्चय नहीं, हमारे तो व्यवहार सुनना है। वहाँ मोरबी है न? उस जयन्ती को।

कान्तिभाई और जयन्तीभाई नहीं ? तीन भाई हैं। वे भाई कहते थे। रतिभाई। रतिभाई है न अपने ध्रांगध्रा के। विशाश्रीमाली। वे कहते थे कि मेरे साथ बात हुई तो कहे, हमारे तो व्यवहार सुनना है, निश्चय सुनना नहीं। कहो। यहाँ शिष्य कहता है, प्रभु! हमको तो चिदानन्द भगवान प्राप्त हो, वह हमको सुनना है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब आती है, यह किस अपेक्षा की बात ? उपदेश बोध (है)। सिद्धान्तबोध ही यथार्थ है। आहाहा!

भावार्थ :- वह चिदानन्द शुद्ध स्वभाव परमात्मा,... भगवान आत्मा अन्दर शुद्ध चिदानन्द प्रभु, **आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के भेदरूप संज्ञाओं को आदि लेके समस्त विभावों से रहित,...** है। आहाहा! चिदानन्दस्वभाव भगवान आत्मा का, उसमें आहार, भय, मैथुन और परिग्रह-संज्ञा, इनसे रहित आत्मा है। यह आदि विभावरहित आत्मा है। ऐसा। आहाहा! उदयभाव ही जिसमें नहीं। परमस्वभाव परमस्वभाव सहजात्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप, परमपारिणामिकस्वरूप, जिसमें उदयभाव ही नहीं। आहाहा!

वीतराग निर्विकल्पसमाधि के बल से... आहाहा! वीतराग निर्विकल्प समाधि के बल से अन्तर में **निज स्वभावकर उत्पन्न हुए...** अपने स्वभाव से अन्दर उत्पन्न हुआ। आहाहा! **परमानन्द सुखामृतकर सन्तुष्ट हुआ है हृदय जिनका,...** आहाहा! परमानन्द सुखामृत। भगवान आत्मा का आश्रय लेकर परमानन्द सुखामृत जिसे प्रगट हुआ है। आहाहा! **ऐसे निकट संसारी-जीवों के...** अब जिसे संसार का अन्त निकट है। आहाहा! **चतुर्गति का भ्रमण दूर करनेवाला है,...** आहाहा! आहाहा! **जन्म-जरा-मरणरूप दुःख का नाशक है, तथा वह परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है,...** आहाहा! ऐसा जो भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं, हों! परमात्मा। **निज स्वरूप परमसमाधि में लीन...** परमात्मा निजस्वरूप परम आनन्द में लीन **महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है,...** इस मोक्ष का देनेवाला तो यह है। व्यवहार-फ्यवहार कोई मोक्ष का देनेवाला नहीं है। आहाहा!

परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला

है, वही सब तरह ध्यान करनेयोग्य है,... आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप, वही ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! **सो ऐसे परमात्मा का स्वरूप आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ।** लो! ऐसा जो परमात्मा का स्वरूप **आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ।** आहाहा! यह सुनना चाहता हूँ, ऐसा कहता है। व्यवहार-फ्यवहार नहीं। यह परमानन्द का नाथ कैसे प्राप्त हो, यह सुनना चाहता हूँ। आहाहा!

इसलिए कृपा कर आप कहो। इस प्रकार प्रभाकर भट्ट ने श्री योगीन्द्रदेव से विनती की। लो। विनती की। ऐसी विनती की। हमको व्यवहार पहले कहो, ऐसा उसने नहीं कहा। हमको तो चिदानन्द भगवान परमात्मा सुखामृत से भरपूर जिसका आश्रय, उसका वीतराग परमानन्द प्राप्त हो, यह बात हमको सुनाओ। निश्चय की बात सुनाओ, ऐसा कहता है। आहाहा! चार गति के दुःख को नाश करनेवाली आत्मा की समाधि, परमानन्द सुख के शान्ति से भरपूर, ऐसा जो आत्मा, उसकी बात मुझे कहो, प्रभु! आहाहा!

गाथा - ११

अथ प्रभाकरभट्टविज्ञापनानन्तरं श्रीयोगीन्द्रदेवास्त्रिविधात्मानं कथयन्ति –

११) पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावें चित्ति धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि (विँ ?)।।११।।

पुनः पुनः प्रणम्य पञ्चगुरून् भावेन चित्ते धृत्वा।
भट्टप्रभाकर निश्रृणु त्वम् आत्मानं त्रिविधं कथयामि।।११।।

पुणु पुणु पणविवि पंचगुरु भावें चित्ति धरेवि पुनः पुनः प्रणम्य पञ्चगुरूनहम्। किं कृत्वा। भावेन भक्तिपरिणामेन मनसि धृत्वा पश्चात् भट्टपहायर णिसुणि तुहुं अप्पा तिविहु कहेवि हे प्रभाकरभट्ट ! निश्चयेन श्रृणु त्वं त्रिविधमात्मानं कथयाम्यहमिति। बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मभेदेन त्रिविधात्मा भवति। अयं त्रिविधात्मा यथा त्वया पृष्टो हे प्रभाकरभट्ट तथा भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियाः परमात्मभावनोत्थवीतरागपरमानन्दसुधारसपिपासिता वीतरागनिर्विकल्पसमाधि-समुत्पन्नसुखामृतविपरीतनारकादिदुःखभयभीता भव्यवरपुण्डरीका भरतसगर-राम-पाण्डव-श्रेणिकादयोऽपि वीतरागसर्वज्ञतीर्थंकरपरमदेवानां समवसरणे सपरिवारा भक्तिभरनमितोत्तमाङ्गाः सन्तः सर्वागमप्रश्नानन्तरं सर्वप्रकारोपादेयं शुद्धात्मानं पृच्छन्तीति। अत्र त्रिविधात्मस्वरूपमध्ये शुद्धात्मस्वरूपमुपादेयमिति भावार्थ :।।११।।

इस कथन की मुख्यता से तीन दोहे हुए। आगे प्रभाकरभट्ट की विनती सुनकर श्रीयोगीन्द्रदेव तीन प्रकार की आत्मा का स्वरूप कहते हैं –

मैं पंच गुरु को कर प्रणाम पुनः पुनः नित भाव से।
मन बसा कहता त्रिविध आतम भट्ट! तुम सुनना उसे।।११।।

अन्वयार्थ :- [पुनः पुनः] बारम्बार [पञ्चगुरुन्] पंचपरमेष्ठियों को [प्रणम्य] नमस्कारकर और [भावेन] निर्मल भावोंकर [चित्ते] मन में [धृत्वा] धारण करके ['अहं'] मैं [त्रिविधं] तीन प्रकार के [आत्मानं] आत्मा को [कथयामि] कहता हूँ, सो [हे प्रभाकर भट्ट] हे प्रभाकरभट्ट, [त्वं] तू [निशृणु] निश्चय से सुन।

भावार्थ :- बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेदकर आत्मा तीन तरह का है, सो हे प्रभाकरभट्ट जैसे तूने मुझसे पूछा है, उसी तरह से भव्यों में महाश्रेष्ठ भरतचक्रवर्ती,

सगरचक्रवर्ती,रामचन्द्र, बलभद्र, पांडव तथा श्रेणिक आदि : बड़े बड़े राजा, जिनके भक्ति-भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं, महा विनयवाले परिवारसहित समोसरण में आके, वीतराग सर्वज्ञ परमदेव से सर्व आगम का प्रश्नकर, उसके बाद सब तरह से ध्यान करने योग्य शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे। उसके उत्तर में भगवन् ने यही कहा, कि आत्म-ज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है। भरतादि बड़े बड़े श्रोताओं में से भरतचक्रवर्ती ने श्रीऋषभदेव भगवान से पूछा, सगरचक्रवर्ती ने श्री अजितनाथ से, रामचन्द्र बलभद्र ने देशभूषण, कुलभूषण केवली से तथा सकलभूषण केवली से, पांडवों ने श्रीनेमिनाथ भगवान् से और राजा श्रेणिक ने श्रीमहावीरस्वामी से पूछा। कैसे हैं ये श्रोता जिनको निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है? परमात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अमृतरस के प्यासे हैं, और वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर उत्पन्न हुआ जो सुखरूपी अमृत उससे विपरीत जो नारकादि चारों गतियों के दुःख, उनसे भयभीत हैं। जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा और भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा, वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। सारांश यह हुआ, कि तीन प्रकार आत्मा के स्वरूपों से शुद्धात्म स्वरूप जो निज परमात्मा वही ग्रहण करनेयोग्य है। जो मोक्ष का मूलकारण रत्नत्रय कहा है, वह मैंने निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है, उसमें अपने स्वरूप का श्रद्धान, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का ही आचरण यह तो निश्चयरत्नत्रय है, इसी का दूसरा नाम अभेद भी है, और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, नवतत्वों की श्रद्धा, आगम का ज्ञान तथा संयम भाव ये व्यवहाररत्नत्रय हैं, इसी का नाम भेदरत्नत्रय है। इनमें से भेदरत्नत्रय तो साधन हैं और अभेदरत्नत्रय साध्य हैं।।११।।

गाथा - ११ पर प्रवचन

इस कथन की मुख्यता से तीन दोहे हुए। है न? ८, ९ और १०। सात गाथा तक तो वन्दन था। ८, ९, १० ये तीन दोहे कहे। **आगे प्रभाकर भट्ट की विनती सुनकर श्री योगीन्द्रदेव तीन प्रकार की आत्मा का स्वरूप कहते हैं।** लो!

११) पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावें चित्ति धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि (विं ?)।।११।।

इसका शब्दार्थ। **अन्वयार्थ - बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर...** विशेष है। योगीन्द्रदेव ने सात गाथा में तो स्तुति की, परन्तु विशेष वापस याद करके **बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर और निर्मल भावोंकर...** पवित्र भावों से, **मन में धारण करके मैं तीन प्रकार के आत्मा को कहता हूँ,...** आहाहा! **सो हे प्रभाकर भट्ट, तू निश्चय से सुन। 'निशृणु'** आहाहा!

मुमुक्षु : यह पर्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रभाकर आत्मा ऐसा है, उसे सुनना है।

मुमुक्षु : यह तो तीन अवस्थायें कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तीन अवस्थायें, परन्तु वह आत्मा है, वह बहिरात्मा में ऐसा, अन्तरात्मा, परमात्मा यह बताकर उसे आत्मा बतलाना है। बहिरात्मा राग को अपना माननेवाला, जो इसमें नहीं उसे अपना माने, वह बहिरात्मा। उसकी शुरुआत की है, इन्होंने परमात्मप्रकाश में। और अपना जो स्वरूप है, उसे माने, वह अन्तरात्मा। और अपना स्वरूप जैसा है, वैसा पूर्ण प्रगट हो जाये, वह परमात्मा। ऐसा करके आत्मा की तीन अवस्थायें बतायीं। परमात्मस्वरूप पूर्ण तो स्वयं है। उसमें बहिर् को माने, वह बहिरात्मा। पूर्णानन्द का नाथ, उसे परमात्मस्वरूप है, उसे माने, उसे अनुभव करे, वह अन्तरात्मा और पूर्णानन्द जैसा स्वभाव है, वैसी पूर्ण दशा जिसकी प्रगट हुई है, वह परमात्मा। आहाहा! ऐसा करके परमात्मस्वरूप (का) ही वर्णन करते हैं। समझ में आया?

हे प्रभाकर भट्ट! सुन! लो, दूसरे में तो ऐसा कहते हैं कि सुनने से भी राग होता है। यह बात तो बराबर है, परन्तु सुनने के समय तो इसे ऐसा कहे न? समयसार में नहीं आया? **'वंदित्तु सव्व सिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते। वोच्छामि समयपाहुडमिणमो'** मैं समयप्राभृत को कहूँगा। **'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं'** तो वोच्छामि कहने से, सुन—ऐसा तो कहा न उसमें? मैं कहता हूँ। आहाहा! व्यवहार तो बीच में आता है।

मुमुक्षु : वह तो कह सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कह सकते हैं, यह बात नहीं है। अन्दर कह सकने का

निमित्तपना होता है। ऐसी बातें हैं। '**वोच्छामि**' वहाँ है। वहाँ कहे, देखो! कह सकते हैं। वाणी को कर सकते हैं, ऐसा उसमें से निकालते हैं। ऐसा नहीं है, बापू! वह व्यवहार से कहते हैं, उसे तू ऐसा ही मान ले तो तू सुनने के योग्य नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुनने के योग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्य नहीं। जो हमें कहना है, व्यवहार से निश्चय को बतलाना है। उसके बदले (कहे), व्यवहार से तुमने कहा न, तो व्यवहार भी आदरणीय हुआ या नहीं? ऐसा पकड़ा, वह सुनने के योग्य नहीं। ऐई! पुरुषार्थसिद्धि उपाय में (आया है), अबुद्धस्य बोधनार्थं... देशना नास्ति... मौनपने से ऐसे लाभ होता है, ऐसा कथन करे तो वह पकड़े कि मौनपने से लाभ होता है तो तुम क्यों बोलते हो? सुन न! कहने का आशय है उसे तू पकड़ न। आता है न शास्त्र में। मौन से आत्मा को लाभ होता है। वाणी से नहीं। तब कहे, मौन से लाभ हो तो तुम प्ररूपणा करके क्यों बोलते हो? यह सुननेवाले को स्वच्छन्दता है, कहते हैं। जो आशय है, उस आशय को पकड़ता नहीं और यह पकड़ता है। आहाहा! '**छलं ण घेत्तव्वं**' (समयसार) पाँचवीं (गाथा में) आता है न? '**छलं ण घेत्तव्वं**'।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

ऐसी आड़ी बात—स्वच्छन्दता नहीं करना। आहाहा!

बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेदकर आत्मा तीन तरह का है,... आहाहा! **सो हे प्रभाकर भट्ट! जैसे तूने मुझसे पूछा है,...** जैसा तूने मुझसे पूछा। **उसी तरह से भव्यों में महाश्रेष्ठ...** आहाहा! योग्य प्राणियों में महाश्रेष्ठ **भरत चक्रवर्ती....** ने भगवान से पूछा था। ऋषभदेव भगवान से। दूसरे सब प्रश्न आगम के करने के पश्चात् योगफल में यह प्रश्न परमात्मा का किया था। आहाहा! समझ में आया? **भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, रामचन्द्र, बलभद्र, पाण्डव तथा श्रेणिक आदि बड़े-बड़े राजा, जिनके भक्ति-भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं,...** आहाहा! चक्रवर्ती ऐसे... आहाहा! विनय से भगवान को ऐसा प्रश्न करते हैं। आहाहा! **मस्तक हो गये हैं,...** वीतराग **भक्ति-**

भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं,... ऐसा का ऐसा ऐसा करे, ऐसे नहीं, ऐसा कहते हैं। मस्तक झुक गया है। आहाहा!

महाविनयवाले परिवारसहित... आहाहा! भरत चक्रवर्ती आदि रामचन्द्र, बलभद्र, पाण्डव **महाविनयवाले परिवारसहित समवसरण में आके,...** परिवार सहित आये, ऐसा कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार लेकर सुनने आये। आहाहा! जिनके घर में छह खण्ड के राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, ऐसा चक्रवर्ती भी भगवान के समवसरण में परिवार सहित सुनने आता है। आहाहा! इसे सुनने की निवृत्ति नहीं मिलती। वापस ऐसा कहा कि समवसरण में आते हैं। वह समवसरण उसके घर में नहीं जाता। आहाहा! वहाँ जाकर प्रभु को पूछते हैं। आहाहा!

जाकर वीतराग सर्वज्ञ परमदेव से... आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमदेव **सर्व आगम का प्रश्नकर...** भाषा तो देखो! आहाहा! सर्व आगम के प्रश्न। ऐसा कि दूसरे चारों ही अनुयोग के सब प्रश्न हो गये। **उसके बाद...** आहाहा! सर्व आगम अर्थात् चारों अनुयोग। **उसके बाद सब तरह से ध्यान करनेयोग्य...** आहाहा! चारों ओर से भगवान का ध्यान करनेयोग्य आत्मा... आहाहा! **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** आहाहा! प्रभाकर भट्ट को कहते हैं कि भरत चक्रवर्ती भी ऋषभदेव भगवान के समवसरण में जाकर, आगम के प्रश्न होकर अन्त में शुद्धात्मा का प्रश्न करते थे। समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले यह नहीं किया और अन्त में क्यों किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सार है इसलिए, ऐसा कहते हैं। पहले जानपने की बात की। परन्तु सार वस्तु जो है, उसका प्रश्न बाद में किया। आहाहा!

शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे। भाषा देखो! यह पूछते हैं शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते हैं। पूछनेवाला ऐसा कहता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य में आता है न? पाँचवीं गाथा में। हमारे गुरु ने हमको कृपा करके शुद्धात्मा का उपदेश किया। अर्थात् दूसरा नहीं किया? दूसरा किया। (परन्तु) यह बतलाना है। हमारे गुरु ने... आहाहा! है? समयसार पाँचवीं गाथा। हमारे ऊपर कृपा करके हमको शुद्धात्मा का उपदेश— अनुग्रह किया। आहाहा! वह यहाँ पूछता है। आहाहा!

शुद्धात्मा का ही.... ऐसा शब्द है। **स्वरूप पूछते थे।** भगवान से यह प्रश्न भरत चक्रवर्ती इत्यादि-इत्यादि, नेमिनाथ भगवान से पाण्डव आदि (ने किया था)। **उसके उत्तर में भगवान ने यही कहा,...** उसके उत्तर में भगवान ने यह कहा। श्रेणिक राजा आदि लिये हैं। यह प्रश्न किया परन्तु इसका उत्तर सहज आता है। वास्तव में प्रश्न बड़े चक्रवर्ती आदि करे। परन्तु इन्होंने किया है, वह गौतम से उसे उत्तर मिला है। परन्तु इसमें इकट्ठा डाला।

कि आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है। भगवान ने उत्तर दिया। आहाहा! **आत्मज्ञान के समान...** आत्मज्ञान के समान। आहाहा! पर का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का नहीं। आत्मज्ञान, वस्तु जो नित्यानन्द प्रभु आत्मा ध्रुव, उसका ज्ञान, आत्मज्ञान। आहाहा! **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** अब किस-किस ने पूछा, यह स्पष्टीकरण बाहर करेंगे। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१० नम्बर के प्रवचन में आवाज खराब होने से
१९६५ के वर्ष का प्रवचन लिया गया है।